ज़िन्दा-ए-जावेद का मातम

सैय्यिदुल उलमा के ख़ुतबे (9)

सय्यदुल उलमा की यह तक़रीर हाता मुमताज़ महल में 11 अक्टूबर 1954ई० मुताबिक़ 12 सफ़र 1374हि० को हुई

इक़बाल सुहैल का एतेराज़ मशहूर है कि-

रोएं वह जो क़ायल हों ममाते शोहदा के
हम ज़िन्द-ए-जावेद का मातम नहीं करते

इसका तजज़िया किया जाए तो क्या होगा? ग़ौर कीजिये कि यह ममात और हयात जो शोहदा के लिए मौरिदे नफ़ी व सिबात हो सकती है क्या है?

ज़ाहिर है कि शोहदा की ज़िन्दगी वह माद्दी ज़िन्दगी नहीं है जिस लेहाज़ से शहादत से पहले उन्हें ज़िन्दा कहा जाता है और जो ज़ाहिरी तौर पर इस दुनिया से जुड़ी होती है इसलिए कि इस्लामी शरीअत में शोहदा की मीरास तक़सीम होती है। उनके बच्चे यतीम और उनकी बीवियाँ बेवा के हुक्म में होती हैं। अगर उनके लिए मौत का ख़याल किसी हैसियत से न किया जाए तो उनके बचे माल की तक़सीम उनके औलाद की यतीमी और उनकी बीवियों की बेवगी बिल्कुल बे बुनियाद होगी। हमारे मज़हबी नज़रिये से शहीद अगर इमाम है तो उसके बाद दूसरा इमाम हो जाता है हालांकि हयाते ज़ाहिरी में एक इमाम के होते हुए दूसरा इमाम मन्सब लेने वाला नहीं होता, बेवा के लिए दूसरे निकाह की इजाज़त जिस तरह शौहर की मौत के बाद है उसी तरह शहादत के बाद, हालांकि ज़िन्दगी में यह मुमकिन नहीं। मौत के अहकाम में सिर्फ़ ग़ुस्ल और कफ़न शहीद के लिए नहीं है। नमाज़े मैय्यित और दफ़्न लाज़िम है और ज़ाहिर है कि इसका भी ताल्लुक़ मौत के साथ है ज़िन्दगी के साथ नहीं।

जबकि शोहदा की ज़िन्दगी इस तरह की नहीं है तो मानना पड़ेगा कि यह ज़िन्दगी जिसे शोहदा के लिए साबित किया गया है। इरतेक़ाए रूहानियत का कोई ख़ास दर्जा है इस एतेबार से देखा जाए तो अल्लाह के औलिया में से किसी के लिए भी अगरचे इस्तेलाही तौर पर शहीद न हो तो मौत नहीं है। बल्कि हमेशा की ज़िन्दगी है जिसके दर्जे अल्लाह से क़रीब होने के एतेबार से अलग-अलग होंगे।

पैग़म्बरे ख़ुदा की हदीस है-

''जो आले मुहम्मदस० की मुहब्बत में मरा वह शहीद है''

बेशक फ़िक़्ही हैसियत से शहीद के अहकाम यानी ग़ुस्ल और कफ़न का साक़ित होना यह जंग के मैदान में शहादत पाने वाले के साथ ख़ास हैं। मगर शहादत के दर्जे का हासिल करना हर मोमिन के लिए मुक़द्दर है फिर जब हर मोमिन ईमान के लेहाज़ से मुर्दा नहीं है तो नबियों और रसूलों का क्या कहना चुनानचे सिवाए नजदी अक़ीदे वाले वहाबियों के बाक़ी सभी मुसलमान पैग़म्बरे ख़ुदा की हयात को मानते हैं। ख़ुद हज़रत की हदीस है कि ''मेरी वफ़ात के बाद मुझ पर उसी तरह सलाम करना जैसे ज़िन्दगी में क्योंकि तुम्हारा सलाम दोनों हालतों में मुझे एक ही तरह से पहुँचेगा।''

कुछ इस्लामी आलिमों ने इसी लिए रसूलस० के रौज़े के पास बुलन्द आवाज़ से बात करने को मना किया है और कहा कि क़ुरआन मजीद में है कि ''तुम अपनी आवाज़ें रसूलस० की आवाज़ों से नीची रखो और तुम रसूलस० से तेज़ आवाज़ में चिल्लाकर बात मत करो'' इस हुक्म को जिस तरह उस ज़माने में पूरा किया जाता था इसी तरह अब होना चाहिए इसलिए कि रसूलस० ज़िन्दा हैं और हमारी आवाज़ सुनते हैं।

अब ऊपर दिये गये शेअ्र के मज़मून पर ग़ौर कीजिये। वह कहता है कि जो ज़िन्द-ए-जावेद हो उसका मातम नहीं करना चाहिए और यह पहले बयान हो चुका कि हमेशगी की ज़िन्दगी अच्छे आमाल से जुड़ी है तो इसका मतलब यह हुआ कि मातम के क़ाबिल उनकी मौत है जो बहुत ही बुरे आमाल वाले हों और अच्छे आमाल रखने वालों को मातम नहीं करना चाहिए।

अब जब कि इस शेअ्र से यह उसूल साबित होता है तो आइये इसे कुरआन के सामने पेश करें क्योंकि कहने वाला देखने में तो मुसलमान है और उसने जो कहा है वह सिर्फ़ शाएराना अन्दाज़ में नहीं है जिसे मुस्कुराने के साथ सिर्फ़ इस शाएराना मज़े को महसूस करते हुए नज़रअन्दाज़ कर दिया जाए। बल्कि उसने मन्तिक़ी अन्दाज़ में सुग़रा और कुबरा तैयार करके एक नतीजा निकाला है जिससे एक पूरी क़ौम के तरीक़े पर एतेराज़ करने का मक़सद है।

कुरआने मजीद की आयत सामने है इस मौक़े की जब फ़िरऔन और उसका लश्कर डूब गया तो इरशाद हुआ- "न उन पर आसमान रोया और न ज़मीन ने गिरया किया। और न उन्हें अल्लाह की तरफ़ से ढील दी गयी।" ज़ाहिर है कि यह इशारा है। जिससे उनके बुरे कामों को दिखाना मक़सद है। इशारे में किसी हक़ीक़त को बयान करके ज़हन को हक़ीक़त की तरफ फिराया जाता है न यह कि इसकी ज़िद को बयान किया जाए। जैसे यह बताना हो कि सुबह हो गयी, तो यह कहेंगे कि रौशनी हो गयी यह नहीं कहेंगे कि अन्धेरा हो गया जो कि शाम की निशानियों में से है। रात की शिद्दत दिखाना हो तो कहेंगे कि हाथ को हाथ नहीं सुझायी देता। जो अन्धेरे की ज़्यादती दिखाना है। अब देखिये शायर का नज़रिया यह था कि रोना उस पर नहीं चाहिए जो अच्छे आमाल वाला हो बल्कि उस पर रोया जाए जो बुरे आमाल वाला हो इसका मतलब यह है कि बुरे कामों का नतीजा है गिरया को लाज़िम करना, अच्छे कामों का नतीजा नहीं है। मगर कुरआन बुरे कामों के इज़हार में कह रहा है: "उन पर आसमान और ज़मीन ने गिरया नहीं किया" इससे साबित होता है कि कुरआन के नज़रिये से बुरे कामों का तक़ाज़ा यह है कि उन पर न रोया जाए। इसके मुक़ाबले में जो अच्छे अमल करने वाले होंगे वह गिरया के मुस्तहक़ होंगे अब जितने बड़े दर्जे वाला इन्सान होगा, जितनी बरकतों और फ़ैज़ानों वाला हो वह दुनिया से उठे तो उसका उठना गिरये का मुस्तहक़ होगा। यूँ तो आम तौर से आसमान और ज़मीन की तरफ गिरये की निस्बत अक़्ली तौर पर हो सकती है जैसे "वस्साएलुल क़रयह्" यानी बस्ती वाले। हमारी रोज़ाना की ज़िन्दगी में पूरा शहर गवाह है। यानी शहर वाले, इसी तरह आसमान और ज़मीन रोते हैं यानी ज़मीन व आसमान वाले, मगर उठने वाले की पेशे ख़ुदा शख़सियत के लेहाज़ से कभी यह मजाज़ हक़ीक़त भी बन सकता है यानी मरने वाला जो दुनिया से उठा तो हक़ीक़त में वह ज़मीन रोयी और आसमान ने गिरया किया। फिर अगर ज़िन्द-ए-जावेद को आसमान व ज़मीन गिरया कर सकते हैं जिनका कोई काम ख़ुदा की मर्ज़ी के बग़ैर नहीं हो सकता तो उसका इन्सान भी मातम करें, तो यह ख़ुदा की मर्ज़ी के मुताबिक़ होगा।

फिर अब ये देखिये कि शहीदों के ज़िन्द-ए-जावेद होने का इल्म हमको किसके ज़रिये से हुआ। ज़ाहिर है कि पैग़म्बरे इस्लाम[स॰] के ज़रिये से फिर इस ज़िन्दगी की ज़रूरतों के हम ज़्यादा जानकार होंगे या फिर इस्लाम? अब इस्लामी तारीख़ पर नज़र डालिये। बताइये जनाबे हमज़ा इब्ने अब्दुल मुत्तलिब[अ॰] शहीद थे या नहीं? यक़ीनन शहीद और ऐसे शहीद कि पैग़म्बरे ख़ुदा[स॰] ने सैय्यिदुश्शोहदा का लक़ब दिया तो फिर ज़िन्द-ए-जावेद होने में क्या शक मगर हमज़ा[अ॰] की शहादत के बाद क्या हुआ, ग़म किया गया या ख़ुशी, आँसू बहाये गये या क़हक़हे लगाये गये। याद रखिये कि सुन्नत वही है जिसकी मिसाल रसूल[स॰] के अमल में हो। और बिदअत वह है जो रसूल[स॰] के अमल के ख़िलाफ हो। अगर हमज़ा[अ॰] की शहादत पर रसूल[स॰] हंसे होते तो रोना बिदअत होता लेकिन अगर रसूल[स॰] रोये हैं तो फिर किसी शहीद पर रोना बिदअत न होगा, ख़ुशियाँ करना ही बिदअत क़रार पायेगा।

तारीख़ गवाह है कि जब जनाबे हमज़ा[अ॰] की शहादत हो गयी है और सफ़िया हमज़ा[अ॰] की बहन, भाई की ख़बर सुनकर ओहद के मैदान की तरफ चलीं और

रसूल[स°] को इसकी ख़बर मिली कि सफिया आ रही हैं तो पहले आपने हज़रत अली इब्ने अबी तालिब[अ°] से फरमाया कि जल्दी हमज़ा[अ°] की लाश को छुपायें ताकि बहन की नज़र भाई के खुले जिस्म पर न पड़े। हज़रत अली[अ°] ने जाकर अपनी चादर जनाबे हमज़ा[अ°] की लाश पर डाली मगर जनाबे हमज़ा[अ°] लम्बे थे, पाँव खुले रह गये तो आपने मैदान की घास इकटठा करके पैरों को छुपा दिया। इतनी देर में सफिया पहुँच गयीं। भाई की लाश पर गिरया शुरु किया इस मौक़े पर यह नहीं हुआ कि रसूल[स°] सफ़िया को रोकते और इरशाद करते कि तुम्हारे भाई ज़िन्द-ए-जावेद हैं। ज़िन्द-ए-जावेद का मातम क्यों करती हो। बजाए इस फ़रमाने के ख़ुद आप सफ़िया के साथ रोने में शरीक हो गये। और तारीख़ में यह जुमला है किः

''यब्की कुल्लमा बकत सफिय्यत व नशज कुल्लमा नशजत सफ़िय्यत''

नशज के माने अरबी में रोते रोते हिचकियाँ बंध जाने के हैं मतलब यह हुआ कि जितना-जितना सफ़िया रोती थीं। इतना-इतना रसूल[स°] गिरया फ़रमाते थे यहाँ तक कि जब सफ़िया की रोते-रोते हिचकियाँ बंधी हुई थीं तो ख़ुद पैग़म्बर[स°] की भी यही हालत थी। अब बताइये ज़िन्द-ए-जावेद का मातम होता है या नहीं।

इसके बाद जब हज़रत[स°] मदीना मुनव्वरा तशरीफ लाये और मस्जिद की तरफ जाते हुए सुना कि अन्सार के घरों में रोने की सदाएं बुलन्द हैं। उन रिश्तेदारों के ग़म में जो ओहद की जंग में शहीद हुए थे तो हज़रत ने फरमायाः अफसोस मेरे चचा हमज़ा[अ°] पर रोने वालियाँ कोई नहीं'' चूँकि जनाबे सफ़िया अपने घर में अकेली थीं, मिसाल मशहूर है ''अकेला आदमी न रोता भला न हंसता'' वह थोड़ी देर रोकर चुप हो गयी थीं हज़रत ने हसरत भरी यह बात कही तो इसकी ख़बर अन्सार की औरतों तक पहुँच गयी। वह उसे सुन कर जनाबे हमज़ा[अ°] के घर आ गयीं और हमज़ा[अ°] का मातम किया। यह ज़िन्द-ए-जावेद का मातम किसने करवाया, अल्लाह के रसूल[स°] ने। अब किसी मुसलमान को इख़्तियार है कि वह इस मातम को अच्छा समझे या बुरा?

जनाबे जाफ़रे तैयार[अ°] भी शहीद हुए। मूतह में उनके दोनों हाथ कटे, पैग़म्बरे ख़ुदा[स°] ने मिंबर पर अपने ख़ुतबे में उनकी शहादत की ख़बर मुसलमानों को सुनायी। जो सैय्यिद-ए-आलम[स°] के घर भी पहुँच गयी। जब हज़रत तशरीफ लाये तो देखा फ़ातिमा ज़हरा[स°] रो रही हैं। रसूल[स°] ने उन्हें भी नहीं फरमाया कि जाफर[अ°] ज़िन्द-ए-जावेद हैं, रोती क्यों हो बल्कि आपने इरशाद फरमायाः

''जाफ़र[अ°] ऐसे आदमी पर रोने वालों को रोना ही चाहिए''

लीजिये जनाब रसूल[स°] ने एक आम उसूल का एलान कर दिया। अगर कहा होता कि जाफर[अ°] पर ज़रूर रोना चाहिए तो वह एक जुज़्वी हुक्म होता। उसे सिर्फ मिसाल के तौर पर पेश किया जा सकता था मगर ''अला मिस्ले जाफ़र'' जाफर[अ°] जैसे आदमी पर यह तो एक कुल्ली उसूल है। एक उसूल मेयार है। अब जाफर ऐसे की लफ़्ज़ के एक माने यह हो सकते हैं कि ऐसी ख़ूबियों वाले शख़्स पर तब भी साबित होगा कि हुस्ने आमाल का नतीजा है इस्तेहक़ाक़े गिरया जो क़ुरआन की आयत के बिल्कुल मुताबिक़ है। और दूसरे माने यह हो सकते हैं कि जिसको इस तरह मौत आती हो जैसे जाफर[अ°] को आयी। यानी ख़ुदा के रास्ते में शहीद हुआ हो। तब तो साफ़-साफ़ यह उस उसूल का एलान है कि ज़िन्द-ए-जावेद ही का मातम किया जाना चाहिए। अब किस मुसलमान के लिये जाएज़ होगा कि वह कहे हम ज़िन्द-ए-जावेद का मातम नहीं करते। वह जब यह कहता है तो पैग़म्बरे ख़ुदा[स°] के इरशाद से बग़ावत का एलान करता है। जो अगर समझबूझ कर है तो यक़ीनन इस्लाम के दायरे से ख़ारिज करने के लिए काफ़ी है।

ऊपर दिये गये अपने मज़कूरा बयान की रौशनी में अगर हम एक शेअ्र की शक्ल में इक़बाल सुहैल का जवाब देना चाहें तो यूँ कह सकते हैं:

क्या रोओगे उनको जो हलाके अबदी हैं
क्यों ज़िन्द-ए-जावेद का मातम नहीं करते

(यानी) क़ुरआन और हदीस तो यही कह रहे हैं कि ज़िन्द-ए-जावेद का मातम करना चाहिये।

अब अगर कुछ लोग इसे पसन्द नहीं करते तो वह उनका मातम करें जिन्हें अबदी हलाकत नसीब हुई

है मगर उनका ज़मीर भी शायद इसको पसन्द न करेगा।

कहा जाता है कि रोना बुज़दिली की निशानी है। मैं कहता हूँ कि किसी ख़तरनाक जंग में मौजूद रह कर ख़तरे के एहसास से रोना बुज़दिली की निशानी हो सकती है मगर किसी ख़तरनाक जेहाद में न शामिल होने पर रोना बिल्कुल बहादुरी और शुजाअत है। याद रखिये कि कर्बला के मुजाहिदीन ज़ख़्म खाते और ख़ून बहाते हुए गिरया नहीं करते थे। बल्कि वहाँ तो बुरैर और अब्दुर रहमान आपस में मज़ाक़ करते नज़र आते हैं। वहाँ तो अब्बास[अ०] और अली अकबर[अ०] का क्या कहना अली असग़र[अ०] तक मुस्कुराते हुए शहीद हुए हैं।

हाँ अब्बास[अ०] नहीं रोये और अली अकबर[अ०] नहीं रोए क्योंकि उन्हें ख़ून बहाने का मौक़ा मिल गया। मगर ज़ैनुलआबिदीन[अ०] उम्र भर रोये। क्योंकि ख़ुदा की मस्लेहत ने उनको इस क़ुर्बानी में शरीक होकर शहीद होने से मजबूर बना दिया था।

हमारी भी क़िस्मत नाज़ करती कि इस क़ुर्बानी में अमली हैसियत से शरीक होते तो फिर ख़ून बहाते। आँसू न बहाते। यह आँसू बहाना तो इस पर है कि इस सआदत को हासिल न कर सके। अब अगर इस तसव्वुर के साथ यह आँसू बहाये जा रहे हैं तो इनसे हिम्मत में कमज़ोरी पैदा नहीं हो सकती बल्कि इसका अमली नतीजा यह होगा कि हमें आरज़ू है। और बेचैनी से इन्तिज़ार कि अब जो दीन की मदद का अमली मौक़ा हमें मिल सके। इसमें अपनी मुमकिन और बा महल क़ुर्बानी से पीछे न हटें। ❁❁❁

बक़िया.......... हज़रत अली[अ०] की काबे में विलादत और ....

इसके लिए उन बड़े अहलेसुन्नत उलमा का नाम लिख देना काफ़ी है जिनका ज़िक्र करना इस रिवायत को इसके सही होने की ज़मानत है।

इब्ने मग़ाज़ली मुसन्निफ़े किताबे मनाक़िब, अल्लामा बदख़्शी मुसन्निफ़े नुज़ुलुल अबरार, कमालुद्दीन मुहम्मद बिन तलहा शाफ़ई मुसन्निफ मतालिबुस्सुऊल, मुल्ला मुहम्मद सालेह तिरमिज़ी कश्फ़ी मुसन्निफ़ मनाक़िबे मुरतज़वी, शैख़ अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी मुसन्निफ़ मदारिजुन्नुबुव्वह, मोलवी मुहम्मद मुबीन फ़िरंगीमहली मुसन्निफ़ वसीलतुन्नजात, सिब्ते इब्ने जौज़ी मुसन्निफ तज़किरा ख़वासुल उम्मह, अली बिन बुरहानुद्दीन शाफ़ई मुसन्निफ़ इन्सानुल उयून, मूफ़िक़ बिन अहम ख़्वारज़्मी मुसन्निफ़ मनाक़िब, शाह वलियुल्लाह मुहद्दिस देहलवी साहेबे इज़ालतुल ख़िफ़ा।

आख़री बुज़ुर्ग यानी हिन्दुस्तान के बैहक़ी हज़रत मुहद्दिस देहलवी ने तो साफ़-साफ़ इस रिवायत के तवातुर की गवाही दी है और लिखा हैः

''मुतावातिर ख़बरों से साबित है कि फ़ातिमा बिन्ते असद के बत्न से अमीरुलमोमिनीन की पैदाईश ठीक काबे के अन्दर हुई और आप जुमा के दिन 13 रजब आमुलफ़ील से तीस साल के बाद काबे में पैदा हुए और काबे के अन्दर कोई शख़्स आपसे पहले और आपके बाद पैदा नहीं हुआ।''

इस इबारत से जहाँ इस वाक़िए का तवातुर साबित होत है उसी तरह ये भी मालूम होता है कि यह फ़ज़ीलत हज़रत से ख़ास है और आपसे पहले और बाद किसी को ये इज़्ज़त नहीं मिली मगर क्या कहा जाए तास्सुब को कि जब अमीरुलमोमिनीन[अ०] की इस बड़ाई का इन्कार नक़्शे बर आब हो और इस्लामी तारीख़ ने धुनों पर हाथ रख दिया तो ये बात निकाली गयी कि ये क़िस्सा अमीरुलमोमिनीन की फ़ज़ीलत से ख़ास नहीं है बल्कि हकीम बिन हिज़ाम भी जाहिलियत में काबे के अन्दर पैदा हुआ था।

हम नहीं समझ सकते कि हज़रत शाह वलियुल्लाह मुहद्दिस देहलवी जैसे बड़े आलिम अपनी किताब में क्यों लिख देते हैं कि ''अली[अ०] के पहले और उनके बाद कोई शख़्स काबे में पैदा नहीं हुआ''।

और अख़तब ख़्वारज़्मी मनाक़िब में लिखते हैं ''अली के पहले बैतुल्लाह में कोई शख़्स पैदा नहीं हुआ और ये वह बड़ाई है जिसको ख़ुदा ने बड़ाई और इज़्ज़त की वजह से आपके साथ ख़ास क़रार दिया''।

क्या ये लोग जाहिल थे? तंग नज़र थे? या शिया थे? या तारीख़ और हदीस से बेख़बर थे? यक़ीनन इन मुस्तनद उलमा की खुली बातों के बाद इस ख़याल की कोई हैसियत बाक़ी नहीं रहती। वस्सलाम ✹✹✹